गणित शिक्षण में प्रयोगात्मक विधि–एक शिक्षणशास्त्रीय भ्रम

❑ रुमेश चन्द्र व बीरेन्द्र सिंह रावत

इस आलेख में गणित की प्रकृति और उसकी विशिष्ट भाषा के साथ ही इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। ज्ञान-अनुशासन के रूप में गणित की प्रकृति के अनुरूप शिक्षण-शास्त्र अपनाने पर लेख में विशेष रूप से जोर दिया गया है। गणित शिक्षण की प्रचलित प्रवृत्तियों की समीक्षा करते हुए इस क्षेत्र में प्रयुक्त 'गणित में प्रयोग की भूल' तथा 'गणित में सरलीकरण (रिडक्शन) की भूल' को इंगित किया गया है। लेख में 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' (2000) में गणित' के प्रति अपनाये गये रवैये और बिड़ला अम्बानी रिपोर्ट (2002) में गणित व दर्शन के लिए प्रयुक्त दृष्टिकोण की तीखी आलेचना है। अंत में दर्शन की स्मृतियों को मिटाने के प्रयासों पर गंभीर चिंता जतायी गयी है।

भूमिका

किसी विषय को जब ज्ञान अनुशासन का दर्जा दिया जाता है तो उसके आधार में कुछ ज्ञानशास्त्रीय मान्यतायें होती हैं । वह विषय समस्याओं, उद्देश्यों, विधियों आदि की दृष्टि से दूसरे विषयों से भिन्न होता है। ये सारी भिन्नतायें विशिष्ट होने पर संगठित रूप से उस विषय की प्रकृति को निर्धारित करती हैं । किसी विषय की प्रकृति तथा उस विषय को पढ़ाए जाने के तरीकों में गहरा संबंध होता है क्योंकि शिक्षण-विधि, विषय की प्रकृति में ही अन्तर्निहित होती है। किसी विषय के सही संप्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि उसकी शिक्षण-विधि के साथ संगतता हो । विषय की प्रकृति तथा शिक्षण-विधि के बीच सही तालमेल, शिक्षणशास्त्र का एक महत्वपूर्ण पहलू है । किसी कक्षा में इस तथ्य को नजरअंदाज करके चलना अनुशासन तथा विद्यार्थी दोनों के हित में नहीं होगा। किसी कक्षा को उपयुक्त वातावरण के साथ संचालित करने के लिए जितनी आवश्यकता मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र जैसे अनुशासनों को समझने की है, उतनी ही आवश्यकता इस बात की भी है कि पढ़ाए जा रहे विषय के अनुशासन की प्रकृति को समझा जाए। किसे पढ़ाया जा रहा है ? क्यों पढ़ाया जा रहा है ? जैसे सवालों के साथ-साथ यह सवाल भी महत्वपूर्ण है कि क्या पढ़ाया जा रहा है ? क्या पढ़ाया जा रहा है का संबंध अनुशासन से होता है । अनुशासन की समझ यह तय करने में मदद करती है कि किस विधि द्वारा पढ़ाया जाना स्वस्थ शिक्षणशास्त्रीय वातावरण रचने में सहायक होगा ।

गणित पढ़ाये जाने की विधि के संदर्भ में कुछ शिक्षकों, शिक्षा-शास्त्रियों, शिक्षाविदों में एक ऐसा भ्रम व्याप्त है जिसकी पड़ताल की जानी चाहिए । यह भ्रम गणित को प्रयोगात्मक विधि द्वारा पढ़ाये जाने की वकालत से संबंधित है । इस भ्रम का प्रभाव न केवल विद्यार्थियों पर बल्कि विषय के विकास तथा ज्ञान की संस्कृति पर भी पड़ सकता है । पढ़ाने के तरीकों का गहरा रिश्ता इस बात से भी है कि हमारा सामाजिक स्वप्न क्या है ? इस संदर्भ में औपचारिक स्कूलों की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है, क्योंकि गणित जैसे विषय की व्यवस्थित समझ केवल रोजमर्रा की गतिविधियों से मिल पाना अत्यन्त कठिन है । यदि औपचारिक स्कूली तंत्र अपनी भूमिका का निर्वाह ईमानदारी से नहीं करता तो वर्तमान में ऐसा कौन-सा तंत्र है जिसकी ओर इस संदर्भ में आशा से देखा जा सकता है ?

गणित की प्रकृति एवं भाषा

किसी भी विषय के साथ गहरा संबंध स्थापित करने के लिए उस विषय की प्रकृति को समझना अत्यन्त आवश्यक है । जो लोग गणित शिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हैं या गणित का अध्ययन कर रहे हैं, उनके लिए तो इसकी प्रकृति को समझना और भी आवश्यक हो जाता है। इससे विषय के अध्ययन-अध्यापन के मार्ग में आने वाली समस्याओं की पहचान तथा निदान करने में सहायता मिलती है। गणित अध्ययन-अध्यापन में लगे लोगों के लिए इसकी प्रकृति को समझना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि वे स्वयं विषय के रचनाकार नहीं होते । उन्हें तो पहले से निश्चित ढाँचे को, उसी के अनुसार समझना तथा पढ़ाना होता है ।

कान्ट की शब्दावली में गणितीय ज्ञान 'अ-प्रायओरी सिन्थेटिक[1] है । रसल के अनुसार कान्ट द्वारा गणित को 'अ-प्रायओरी सिन्थेटिक' माना जाना रुचिकर होने पर भी वैध नहीं है । [2] हार्डी के शब्दों में कोई गणितज्ञ, चित्रकार या कवि की तरह पैटर्न बनाता है। लेकिन उसके पैटर्न उनकी तुलना में अधिक स्थाई होते हैं क्योंकि वे विचारों द्वारा निर्मित होते हैं ।[3] यही वजह है कि गणितीय अवधारणाएँ अमूर्त होती हैं । इनका भौतिक आकार-प्रकार नहीं होता । इसी कारण इसे केवल दैनिक जीवन के अनुभवों से नहीं सीखा जा सकता । इसका ढाँचा अनुभवों से विकसित होता है, लेकिन उन पर टिका हुआ नहीं होता ।[4] इसमें अनुभव के पार जाने की पूरी सामर्थ्य होती है । गणित उन बातों तथा वस्तुओं के विषय में भी सटीकता के साथ कह सकता है जो न तो अनुभव में आई हैं और न ही उनके अनुभव में आने की संभावना है । 'हम नहीं जानते कि अब से सौ साल बाद लंदन में कौन रहेंगे ? लेकिन हम जानते हैं कि उनमें से कोई दो तथा कोई अन्य दो व्यक्ति मिलकर चार होंगे । बिना अनुभव के तथ्यों का सही पूर्वानुमान लगा लेने की यह शक्ति आश्चर्यजनक है (स्वनुदित)।'[5] गणित मानव मस्तिष्क की उपज होने के बाद भी अनुभवों से स्वतंत्र क्यों है ? ऐसा इसके अभिगृहितीय (ऐक्सिअमैटिक) ढाँचे की वजह से है ।[6] इस ढाँचे के अनुसार केवल आकारिक-तार्किकता (लाजिकल-फॉरमल) ही गणित की विषय वस्तु निर्मित करती है। यानि इसकी विषयवस्तु में पदार्थ-नुमा वास्तविकता नहीं होती । गणितीय तथ्यों की सत्यता व्यावहारिक हो यह जरूरी नहीं । इन तथ्यों को व्यावहारिक रूप से प्रमाणित न भी किया जा सके तो भी ये निगमनात्मक तर्क (डिडॅक्टिव लॉजिक) के आधार पर वैध होते हैं । वैसे भी आगमन (इनडॅक्शॅन)के सिद्धांत को, आगमन द्वारा ही सिद्ध नहीं किया जा सकता।[7] फिर गणित जैसा विषय तो इसके क्षेत्र से बाहर का विषय है ।

1. ब्रटर्नड रसल. दॅ प्रॉब्लॅम ऑफ फिलॉसफि, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 1980. पृ. 47.
2. वही. पृ. 48.
3. जी. एच. हार्डी. ऍ मैथमॅटीशियनस ॲपॉलॅजी. केम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस. 1967. पृ. 84.
4. अलबर्ट आंइस्टीन. आइडिऑज एंड ॲपिन्यन. रूपा एंड कंपनी. नई दिल्ली. 2002. पृ. 234.
5. ब्रटर्नड रसल. दॅ प्रॉब्लॅम ऑफ फिलॉसफि, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 1980. पृ. 48.
6. अलबर्ट आंइस्टीन. आइडिऑज एंड ॲपिन्यन. रूपा एंड कंपनी. नई दिल्ली. 2002. पृ. 233.
7. ब्रटर्नड रसल. दॅ प्रॉब्लॅम ऑफ फिलॉसफि ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 1980. पृ. 47.

गणितीय तथ्यों में यह अन्तर्निहित होता है कि उनमें कोई आन्तरिक या बाह्य विरोधाभास न हो । इसका अर्थ है कि कोई भी संबंधित परिघटना, उस तथ्य द्वारा समझी जाने से छूट (एक्सक्ल्यूड) न जाए । गणितीय ढाँचे में कम-से-कम प्रस्थापनाओं (प्रॉपॅजिशॅनस) तथा पदों (टॅ:मृज) को परिभाषित कर, उनसे अन्य लेकिन न्यूनतम पदों को निगमित (डिड्यूस) किया जाता है । गणित के इस ढाँचे को निगमन प्रणाली (डिडॅक्टिव सिस्टम) कहा जाता है ।[8] जैसे, एक नियम है अ + ब = ब + अ जो हर स्थिति में वैध होगा, बशर्ते 'अ' तथा 'ब' परिभाषित किये गये हों । इसमें अ तथा ब कोई विशिष्ट वस्तु या अनुभव नहीं है। यदि हो भी तो उनका अवस्तुकरण करना होता है । अंकगणित में भी गणितीय संक्रियाओं के उपयोग के समय, अघोषित रूप में वस्तुओं को समान मान लिया जाता है।

गणितीय अवधारणाएं किसी निश्चित संदर्भ के अन्तर्गत परिभाषा में बंधी होती हैं। यह संदर्भ अभिगृहितीय ढाँचे का होता है । ये अवधारणाएँ इसी संदर्भ में सत्य होती हैं । इनको समझने के लिए संदर्भ तथा परिभाषा दोनों को समझने की आवश्यकता होती है । इनको मात्र परिभाषाओं के माध्यम से प्रेषित नहीं किया जा सकता, क्योंकि परिभाषाओं में अमूर्तता पाई जाती है । 'दो और दो चार होते हैं' - यह कथन केवल किसी विशिष्ट परिस्थिति पर लागू नहीं होता । यह हर स्थिति (मानसिकऔर वास्तविक) के लिए वैध है । यही इस कथन की शक्ति है । लेकिन इसमें 'दो' को परिभाषित करना तथा यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वस्तुओं को किसी समान स्तर पर रूपांतरित किया गया है या नहीं। जैसे दो सेब और दो केले मिलकर न तो चार सेब बनते हैं और न ही चार केले । यहाँ दोनों वस्तुओं को फल में रूपांतरित करना होगा। यह गणित की सीमा है ।

गणितीय अवधारणाओं को अनुभवों से जोड़ पाना हमेशा संभव नहीं होता । इनके सारे संबंध आकारिक-तर्क पर आधारित होते हैं, जो इसकी संरचना में ही निहित होते हैं । इन संबंधों को सामान्य समझ के आधार पर नहीं समझा जा सकता । इसके लिए संबंधों के बीच की भाषा के अर्थ को पकड़ना होता है । इस भाषा को गणितीय ढाँचे की सीमा में ही खोजना होता है । इसी से अमूर्त अवधारणाओं का अर्थ समझ में आ सकता है ।

हार्डी[9] के अनुसार गणित पर बहस में 'सामान्यीकरण' (जनरेलिटी) एक भ्रामक तथा खतरनाक शब्द है । इस शब्द को तर्क शास्त्री बहुत महत्व देते हैं, लेकिन गणित के संदर्भ में यह पूरी तरह असंगत है । गणितीय 'वस्तुएं', 'एनटिटी' या 'संबंध', पूर्णत: अमूर्त (अब्सट्रेक्ट) के रूप में सामान्य होती है । व्हाइटहेड के

8. इरविंग एम. कोपी. सिम्बॉलिक लॉजिक. प्रिंटिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा. लि. नई दिल्ली. 1999. पृ. 158.
9. जी. एच. हार्डी. ए मैथेमिटीशियनस ॲपॉलॉजी. पृ. 105-106

अनुसार 'गणित की प्रमाणिकता इसके पूर्णत: अमूर्त 'सामान्यीकरण' पर निर्भर करती है'(स्वनुदित)।'[10] उनके इस विचार में प्रयुक्त शब्दों में से हार्डी 'सामान्यीकरण' शब्द के प्रयोग को गणित के संदर्भ में फालतू मानते हैं ।

उनके अनुसार कोई खगोलशास्त्री अगर इस बात का दावा करता है कि उसने भौतिक ब्रह्माण्ड के बारे में एक गणितीय प्रूफ की खोज कर ली है तो यह एक निरी बकवास होगी क्योंकि भौतिक घटनाएँ गणित के अमूर्त संसार का हिस्सा नहीं होती । गणितीय ज्ञान भौतिक संदर्भ से मुक्त होता है । ऐसा इसलिए हो पाता है क्योंकि भाषा के स्तर पर गणित एक विशेष प्रकार की भाषा है, जो स्वाभाविक नहीं है । गणित संसार के किसी समुदाय की मातृभाषा नहीं है ।[11]

गणितीय ज्ञान के विकास में क्रमबद्धता तार्किक होती है। इस क्रम में एक कड़ी को समझे बिना अगली कड़ी को समझना असंभव हो जाता है । 'वैसे तो प्रत्येक विषय में अवधारणाओं का समझ में न आना सामान्य-सी बात है, लेकिन गणित में समझ में न आने को छुपाया नहीं जा सकता । क्योंकि यदि तार्किक क्रम में कोई संकल्पना समझ में नहीं आये तो आगे की गति धीमी पड़ जाती है। इनको सीखने के शार्टकट्स नहीं होते । इसमें अवधारणाओं की शृंखला होती है तथा प्रत्येक कड़ी को सीखना उससे जटिल अवधारणा को सीखने का आधार बनता है ।'[12]

गणितीय अवधारणाओं को अनुभवों से जोड़ पाना हमेशा संभव नहीं होता । इनके सारे संबंध आकारिक–तर्क पर आधारित होते हैं, जो इसकी संरचना में ही निहित होते हैं । इन संबंधों को सामान्य समझ के आधार पर नहीं समझा जा सकता । इसके लिए संबंधों के बीच की भाषा के अर्थ को पकड़ना होता है । इस भाषा को गणितीय ढॉचे की सीमा में ही खोजना होता है । इसी से अमूर्त अवधारणाओं का अर्थ समझ में आ सकता है ।

डेविड ह्यूम जैसे अनुभववादी दार्शनिक भी गणितीय ज्ञान के अस्तित्व को नकार नहीं सके । वे मानव बुद्धि से संबंधित सभी विषयों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं । एक वर्ग को वे 'प्रत्ययों के लिए संबंध' तथा दूसरे वर्ग को'वस्तु तथ्य' की संज्ञा देते हैं । उनके अनुसार प्रत्ययों के संबंधों को समझने के लिए हमें किसी प्रकार के अनुभव की आवश्यकता नहीं है ।[13] ह्यूम के मतानुसार गणित के वाक्य पूर्णत: प्रत्ययों के संबंधों अथवा सुनिश्चित शब्दार्थों पर ही निर्भर हैं, अत: उनका ज्ञान हमें भौतिक अनुभव द्वारा नहीं होता । यदि हम इन वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ जानते हैं तो हम अनुभव का आधार लिए बिना ही इन्हें भलीभांति समझ सकते हैं ।[14] ह्यूम ने गणित संबंधी वाक्यों की व्याख्या को'बौद्धिक व्याख्या' कहा है ।

गणितीय प्रमेयों की गंभीरता उनके व्यावहारिक होने में नहीं है ।[15] त्रिभुज के तीनों कोणों का योग 180^0 होता है, इस बात को एक या अधिक त्रिभुजों के तीनों कोणों के योग को मापकर सिद्ध नही किया जा सकता क्योंकि आगमन पद्धति द्वारा गणितीय नियमों को प्रमाणित नहीं किया जा सकता । आगमन द्वारा सिद्ध करने के लिए आवश्यक है कि सिद्ध की जाने वाली विषय वस्तु का भौतिक अस्तित्व हो । यह शर्त गणित की विषय वस्तु पर लागू नहीं होती । इसी बात को दूसरी तरह से इस प्रकार कहा जा सकता है कि आगमन द्वारा केवल उन्हीं बातों की व्याख्या की जा सकती है जो अब तक हुई हैं । लेकिन गणित संभावित बातों की व्याख्या भी पूरी वैधता के साथ कर सकता है । यह पहले भी कहा जा चुका है कि आगमन द्वारा स्वयं आगमन के सिद्धांत को प्रमाणित नहीं किया जा सकता । तब ऐसे में इसके द्वारा निगमन के सिद्धांत को कैसे प्रमाणित किया जा सकता है । गणित की अमूर्त प्रतिस्थापनाओं के प्रति हमारा ज्ञान, व्यावहारिक सामान्यीकरण से भिन्न प्रकार का होता है ।[16]

कोई चित्रकार सटीक वृत खींच सकता है लेकिन इससे 'वृत' को समझने में ऐसी मदद नहीं मिलती जो गणितीय ज्ञान को आगे बढ़ाने में मददगार हो । हार्डी के अनुसार 'यदि मैं सामान्य युक्लिड ज्यामिति पर व्याख्यान दे रहा हूँ, और मैं श्रोताओं की कल्पना को बढ़ाने के लिए श्यामपट्ट पर सरल रेखाएं या वृत या इलिप्स बनाता हूँ तो यह बात साफ है कि मेरे द्वारा सिद्ध की जा रही प्रमेयों की प्रमाणिकता मेरी ड्रॉइंग से अप्रभावित रहती है । वे

10. साइंस एण्ड द मॉर्डन वर्ल्ड. पृ. 33 जैसा कि उपरोक्त संदर्भ के पृ. 106 पर उद्धरित।
11. कॅविन दुरकिन एंड बीट्रिस शीरे (सं)में. लैंगविज इन मैथमॅटिक्स एड्यूकेशॅन. ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 41
12. रोहित धनकर. गणित शिक्षण तथा अधिगम (शोध पत्र). विजेद्र चौहान (अनु.). 1993.
13. वेदप्रकाश वर्मा. डेविड ह्यूम का दर्शन. राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी. जयपुर. 1978 पृ. 19
14. वही. पृ. 21.
15. जी. एच. हार्डी. ए मैथेमिटीशियनस ॲपॉलॉजी. पृ. 84.
16. ब्रटर्नड रसल. दॅ प्राबलॅम ऑफ फिलॉसॅफि. पृ. 47.

मात्र शिक्षणशास्त्रीय उदाहरण हैं, व्याख्यान की वास्तविक विषयवस्तु का हिस्सा नहीं, (स्वनुदित) ।[17]

शिक्षण-सामग्री का उपयोग करते हुए हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि कौन से तत्व पद्धति मूलक हैं तथा कौन से विषय से संबद्ध ? हमें इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि शिक्षण सामग्री स्वयं में विषय न होकर, विषय को समझाने में सहायक मात्र होती हैं और उन्हें उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए ।

बात को आगे बढ़ाने के लिए आर. के. नारायण के उपन्यास 'स्वामी और दोस्त' (अंग्रेजी) का एक दृश्य प्रस्तुत किया जा रहा है । इसमें पिता, अपने बेटे स्वामी को अंकगणित का एक सवाल देते हैं - 'राम के पास 10 आम हैं जिनसे वह 15 आने कमाना चाहता है । कृष्ण को केवल चार आम चाहिए । कृष्ण कितने रुपये चुकाएगा ?'[18] इस प्रश्न का हल ढूँढने में स्वामी समस्या के सार को छोड़कर नैतिकता, आम बेचने वाले की मन: स्थिति आदि पर विचार करता है लेकिन इससे उसे सवाल को समझने तथा उसका हल ढूंढने में कोई मदद नहीं मिलती । हल ढूंढने के लिए उसे बेचने तथा खरीदने वाले की उम्र, जाति, वर्ग आदि प्रश्नों से उदासीन रहना होगा अन्यथा सवाल का हल गणित में असंभव हो जाएगा। किसी गतिविधि का उपयोग करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षण-सामग्री किस सीमा तक विषय को समझने तथा आगे बढ़ाने में मदद करती है तथा कहां उसमें बाधक होती हैं ? यह हो सकता है कि जिस शिक्षण-सामग्री का उपयोग किया जा रहा है वह विद्यार्थियों को विषय से दूर ले जाकर उनके मस्तिष्क में उस सामग्री की सुन्दरता, पदार्थ, उसके बनने की प्रक्रिया, सामाजिकता तथा आर्थिकता से संबंधित सवाल पैदा करे । वे सवाल उपयोगी हो सकते हैं, लेकिन विषय-विशेष में वे कितने उपयोगी हैं, यह भी विचारणीय है।

किसी विषय की भाषा को समझना उसकी प्रकृति को समझने की प्रक्रिया को आसान बना देता है । भाषा का कार्य संप्रेषण करना तथा समझना भी है । ये दोनों कार्य संदर्भों पर निर्भर करते हैं । संदर्भ विषयानुसार बदलते रहते हैं क्योंकि प्रत्येक विषय अलग-अलग संदर्भों पर टिका होता है। विषय को संप्रेषित करने तथा समझाने वाली भाषा संदर्भों से कट नहीं सकती । इस कारण प्रत्येक विषय की एक विशिष्ट भाषा बन जाती है। 'शिक्षण-अधिगम में विशिष्ट भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर शिक्षक विषयवस्तु को सही भाषा-प्रयोग में बांधकर शिक्षार्थी तक नहीं पहुँचा सकता, तो वह अपने कार्य में असफल माना जाएगा । इसी प्रकार अगर विद्यार्थी संप्रेषित कथ्य को सही भाषा के सहारे अपनी संकल्पनात्मक जमीन पर उतार कर आत्मसात नहीं कर पाता तो उसे उस विषय की शिक्षा में कमजोर माना जायेगा। किसी विषय को सीखने सिखाने में विषयानुकूल प्रतीकों को सीखना-सिखाना प्रमुखता रखता है, क्योंकि विषय के प्रतीक ही उसकी संकल्पना तक पहुँचने के माध्यम होते हैं ।'[19] □ (वर्ग) का चित्र बनाते ही या 'वर्ग' बोलते ही यदि बच्चा किसी ऐसी आकृति की कल्पना कर पाए जिसमें गणितीय वर्ग के सभी गुण शामिल हैं तो माना जाएगा कि 'वर्ग' की संकल्पना का शिक्षण- अधिगम सफल रहा और इस सफलता में विषय की भाषा की समझ होना महत्वपूर्ण कारक होता है। □ (वर्ग) संकेत का किसी अन्य संदर्भ में अर्थ भिन्न हो सकता है लेकिन गणित में इसका विशिष्ट अर्थ है । इसी विशिष्ट अर्थ का शिक्षण ही गणित शिक्षण कहलाएगा। प्रतीकों को आत्मसात कैसे किया जाए, यही विषय शिक्षण की समस्या है तथा यही भाषा के उपयोग की भी एक समस्या है । सामान्य अर्थों में वृत्त का अर्थ गोल लिया जाता है, लेकिन गणित में वृत एक बिंदु पथ है, जिसे परिकल्पित करके परिभाषित किया गया है । गणित अनुशासन से संबद्ध व्यक्ति के सामने 'वर्ग' बोलने पर उसके सामने ऐसी आकृति उपस्थित होती है जिसमें गणितीय वर्ग के सभी गुण शामिल होते हैं । वह आकृति केवल चार रेखाओं की बंद आकृति मात्र नहीं होती । इन अर्थों में गणित की भाषा एक विशिष्ट भाषा है ।

गणितीय शिक्षण अधिगम में भाषा पर विशेष बल देना इसलिए आवश्यक होता है क्योंकि गणितज्ञ अमूर्त तथा उच्चस्तरीय सामान्यीकृत संसार में विचरण करते हैं और इसमें सटीक अर्थ लेना होता है ।[20] इसमें अस्पष्टता की गुंजाइश नहीं होती । इसकी अमूर्त प्रकृति के कारण स्थान के अनुसार इसका स्वरूप परिवर्तित नहीं होता । इस अर्थ में यह परिवेश निरपेक्ष है । इसकी भाषा को इसकी वैध परिसीमा में ही समझना होता है ।

यहां तक कि नवीन गणितीय समस्याओं पर विचार करने की प्रक्रिया, गणितज्ञों को उपलब्ध भाषा की सीमाओं के पार ले जाती है, जहाँ लिखे या बोले जाने वाले शब्दों या भाषा की कोई भूमिका नहीं होती । इस प्रक्रिया में गणितज्ञों को प्रचलित शब्दों या अन्य संकेतों का सायास उपयोग करना पड़ता है । यह इस प्रक्रिया की गौण अवस्था होती है जिसमें किन्हीं संकेतों की मदद से स्थापित

17. जी. एच. हार्डी. ए मैथेमिटीशियनस ऍपॉलॉजी. पृ. 125.
18. आर. के. नारायण. स्वामी एंड फ्रेंडस. इन्डियन थॉट पब्लिकेशन. मैसूर. 1935. पृ. 86-89.
19. बीरेन्द्र सिंह रावत. गणित अधिगम में भाषा की भूमिका. लघु-शोध प्रबंध. एम.एड.. दिल्ली विश्वविद्यालय. 1999.
20. कॅविन दुरकिन एंड बीट्रिस शीरे (सं.) में. लैंगविज इन मैथमॅटिक्स एड्यूकेशॅन. ओपॅन यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 3.

साहचर्य (असोसिएशन) को इच्छा होने पर पुन: प्रकट किया जा सकता है । (स्वानुदित) (देखें टिप्पणी, 1) ।[21]

शिक्षण शास्त्र

परंपरागत रूप में शिक्षणशास्त्र को शिक्षण के अभ्यास तथा कला के रूप में लिया जाता है । लेकिन अब बच्चों तथा मानव अधिगम प्रक्रियाओं के संबंध में वैज्ञानिक अध्ययनों के बढ़ने के साथ ही शिक्षणशास्त्र के क्षेत्र में शिक्षण संबंधी विज्ञान की धारणा को भी शामिल किया जाता है ।

शिक्षण एक ऐसा कर्म है जिसका संगठन सीखने वाले के व्यवहार को सुधारने के लिए किया जाता है । इसके लिए यह आवश्यक है कि सीखने वालों को उपयुक्त अनुभव सही समय पर उपलब्ध करवाए जाएँ ।

पूरे शिक्षण माहौल पर इस बात का जबर्दस्त असर होता है कि क्या पढ़ाया जा रहा है (सब्जेक्ट मैटर) ? सुविधा के लिए इसकी सामान्य श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं । इन श्रेणियों में भाषा, मानविकी, विज्ञान, गणित तथा कला को रखा जा सकता है । यद्यपि सभी विषयों में समानता होती है, लेकिन सभी विषयों की अपनी विशिष्टता भी होती है । भाषा के लिए, विशेषकर प्रारंभिक अवस्था में, यह आवश्यक है कि मौखिक अभ्यास को आधार बनाया जाए। मानविकी-विषयों के लिए आवश्यक है कि व्यक्तियों, संस्थाओं तथा व्यक्ति के तात्कालिक एवं दूरगामी संबंधों के कार्य-कारण को समझा जाए । यद्यपि विज्ञान संबंधी नियमों को गणितीय रूपों में व्यक्त करने के लिए निगमन की आवश्यकता होती है, लेकिन विज्ञान, अनुभवों के आधार पर आगमन द्वारा प्राकृतिक घटनाओं को समझने पर बल देता है । मानविकी तथा विज्ञान, सीखने वाले की परिकल्पना कर सकने की योग्यता पर निर्भर करते हैं । गणित अमूर्त, संकेतन तथा निगमित कर सकने की योग्यता की मांग करता है।[22] शिक्षणशास्त्र के संबंध में कही गई उपरोक्त बातों को एक सूत्र में पिरोने पर यह स्पष्ट होने लगता है कि शिक्षणशास्त्र में सीखने वाले के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन तथा विषय की प्रकृति अनिवार्य रूप से शामिल हैं । किसी विशिष्ट विषय को पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में मूल्यॉंकन का सवाल आने पर किन बातों को आधार बनाया जाना चाहिए ? क्या ये तर्कसंगत हो सकता है कि गणित विषय में विद्यार्थी द्वारा की गई तरक्की को मापने या समझने के लिए भाषा की प्रकृति को आधार बनाया जाए ? ऐसा किया जाना तर्कसंगत नहीं हो सकता क्योंकि सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन निरपेक्ष न होकर, विषय सापेक्ष भी होता है । किसी एक प्रकार के व्यवहार को सभी विषयों के प्रति हुए व्यवहार में परिवर्तन का आधार नहीं बनाया जा सकता। यानि एक विषय के लिए अपनाए गए मूल्यॉंकन के आधार किसी अन्य विषय के मूल्यॉंकन हेतु उपयोग में नहीं लाये जा सकते । सीखने वाले तथा विषय की प्रकृति से आगे बढ़कर अब शिक्षणशास्त्र को सामाजिक शिक्षणशास्त्र के रूप में भी समझा जा रहा है । यानि कक्षा के भीतर होने वाली गतिविधियों का व्यापक समाज के साथ कैसा रिश्ता है तथा कैसा रिश्ता बनने की संभावना है ? क्योंकि 'सामाजिक स्वप्न तथा सिखाए जाने के तरीके, शिक्षण शास्त्र के साझा विश्लेषणात्मक घटक हैं' (स्वानुदित)।[23] कक्षा गतिविधियों का सामाजिक-शिक्षणशास्त्र के साथ गहरा रिश्ता होता है। इसलिए कक्षा तथा समाज दो स्वतंत्र इकाई होने के बावजूद किन्हीं संबंधों में बंधी हुई हैं । निश्चित रूप से शिक्षणशास्त्र भी इन संबंधों के स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करता है ।

प्रयोगात्मक विधि

प्रयोगात्मक विधि को समझने के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोगात्मक विज्ञान (टिप्पणी, 2) की विशेषताओं को समझा जाए। 'प्रयोगात्मक पद्धति, परिकल्पना गढ़ने तथा परिकल्पनाओं की जांच हेतु प्रयोगों की बुनावट पर आधारित होती है । किसी समस्या के चुनाव के बाद सही मायनों में प्रयोगात्मक होने के लिए पहला काम उस परिकल्पना को गढ़ने का होता है, जो कि सवाल के घेरे में रखी गई परिघटना का संभावित उत्तर या स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है । उसके बाद परिकल्पना के परीक्षण हेतु प्रयोगों की रचना की जाती है । .... '

यदि परिकल्पना अनुमोदित नहीं होती तो अन्य परिकल्पनाएँ गढ़ी और जांची जाती हैं (स्वानुदित) ।[24] प्रयोगात्मक पद्धति में परिकल्पना या परिकल्पनाओं की जांच के आधार पर दो चरों के मध्य कार्य-कारण का संबंध स्थापित किया जाता है। एक चर को स्वतंत्र बनाकर, उससे परतंत्र चर पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या प्रत्यक्षत: की जाती है। इस प्रकार इसमें निर्धारणवाद[25]

21. जैक्वीज हेडेमर्ड. द सायकोलॉजी ऑफ इन्वेन्शन इन द मैथमैटिकल फील्ड. डोवर पब्लिकेशन. यू. एस. ए. 1945. पृ. 142-143.
22. द न्यू इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका. जिल्द - 13. 15 वां संस्करण विलियम बेनटम पब्लिशन शिकागो. 1984 पृ. 1098-1103. (लेख का यह अंश इस संदर्भ पर आधारित है ।)
23. जैनिफर एम. गोर. ऑन द लिमिट्स टू एम्पॉवरमेन्ट थ्रू किरिटीकल एंड फेमीनिस्ट पेडॅगॉगिज. डेनिस कार्लसन एंड मॉइकल डब्लू. एपल(सं.) वेस्ट व्यू प्रेस. 1998. पृ. 271-288.
24. एलडन जे गार्डनर. हिस्टरी ऑफ बॉयलोजी. विली ईस्टर्न लि. नई दिल्ली. 1978. पृ. 126.
25. लूइस कूहन, लॉरेंस मैनियन एवं कीथ मौरीसन. रिसर्च मेथडस एन एजूकेशन. पांचवा संस्करण रुटलेज फ्लेमर . 2000 पृ. 10.

(डिटरमिनिज्म) का तत्व होता । यानि दो चरों के मध्य कार्य-कारण संबंध को निर्धारित करना । प्रयोगात्मक पद्धति के आधार पर निर्धारित किया गया कार्य-कारण संबंध आगमनात्मक (इन्डक्टिव) होने के कारण प्रत्यक्षवाद[26] (एम्पीरीसिज्म) की सीमा में आता है इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि अवलोकन के आधार पर इसकी जाँच संभव हो । कार्य-कारण संबंध के आधार पर किन्हीं दो चरों के आपसी संबंध की व्याख्या की जाती है । यह व्याख्या अनुभव की अपेक्षा रखती है । जब व्याख्या अनुभवों द्वारा प्रमाणित हो जाती है तभी वह सामान्यीकरण की ओर बढ़ती है । अनुभवों द्वारा प्रमाणित होने पर किसी कार्य-कारण संबंध को सत्य कहा जायेगा।

प्रयोगात्मक पद्धति, आगमन तर्क प्रणाली पर आधारित होती है । तर्क प्रणाली चाहे आगमन हो या निगमन, दोनों में ही सामान्यीकरण की प्रक्रिया में बुनियादी अंतर होता है । जहाँ निगमन तर्क सामान्य से विशेष की ओर बढ़ता है वहीं आगमन , विशेष के आधार पर सामान्य की स्थापना करता है ।[27] निगमन और आगमन तर्क में एक और अन्तर यह भी है कि निगमन तर्क का ज्ञान औपचारिक (फॉरमल) है जबकि आगमन तर्क का वास्तविक (मेटीरियल) । औपचारिक होने के कारण निगमन तर्क क़ा संबंध औपचारिक सत्यता से होता है जिसे वैधता कहते हैं । निगमन तर्क में वास्तविक सत्यता हो, या न हो इससे इसकी वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । 'इसलिए निगमन तर्क वैध या अवैध होते हैं। आगमन तर्क सत्य या असत्य होते हैं ।'[28] किसी निगमनात्मक निष्कर्ष की वैधता इस बात पर निर्भर करती है कि वह आधार वाक्यों के अनुकूल हो । वैधता वास्तविक घटनाओं से स्वतंत्र होती है । जबकि सत्यता को वास्तविक घटनाओं पर खरा उतरना होता है । प्रयोगात्मक पद्धति में परिकल्पनाओं को सत्य या असत्य सिद्ध किया जाता है । क्योंकि उसमें जिस विषय (सब्जेक्ट मैटर) को अध्ययन का क्षेत्र बनाया जाता है, उस क्षेत्र में संबंध औपचारिक न होकर वास्तविक होते हैं । उनकी वास्तविकता की जाँच अवलोकन के आधार पर की जा सकती है ।

गणित - शिक्षण की प्रचलित प्रवृत्तियाँ

स्कूलों में गणित-शिक्षण के चलन पर नजर डालें तो मुख्यत: दो प्रकार के स्वरूपों की पहचान आसानी से की जा सकती है । एक प्रकार का चलन ठोस शिक्षण-सामग्री के उपयोग पर अत्यधिक बल देता है । इस चलन में विश्वास करने वालों की मान्यता है कि हर उम्र के सीखने वालों के लिए ठोस आकृतियों द्वारा ही अनुभव ग्रहण करने का महत्व बना रहता है । इनके अनुसार गणित-अनुशासन के एक महत्वपूर्ण शब्द-समूह (फ्रेज)'मान लो' का जैसे कोई अर्थ ही नहीं है, इसका महत्व होना तो दूर की बात है । ठोस आकृतियों को अत्याधिक महत्व देने की प्रवृति शायद विज्ञान में प्रयोग के अनुचित महत्व को अनावश्यक रूप से गणित में भी लागू करने की आदत के कारण है । इसी के परिणाम स्वरूप इनका आग्रह होता है कि कक्षा में रेखागणित की किसी प्रमेय को समझाते हुए शिक्षक को श्यामपट्ट पर इस्तेमाल हो सकने वाले ज्यामितिय-बाक्स का उपयोग करके सटीक आकृति बनानी चाहिए अन्यथा प्रमेय सिद्ध नहीं हो सकती । इस विधि पर निष्ठा रखने वाले स्वयं को जॉन पियाजे तथा मॉन्टेसरी से प्रेरित मानते हैं । इस प्रवृति को हम 'गणित में प्रयोग की भूल' नाम दे सकते हैं ।

दूसरी बहु-प्रचलित प्रवृत्ति गणित के अर्थ को कुछ सूत्र याद करने, कुछ जमा-घटा कर सकने की कुशलता तक सीमित करके देखती है। इस प्रवृत्ति में विश्वास रखने वालों के लिए पहाड़े याद होना, सूत्र याद होना, संक्रियाओं के कलन की कुशलता आदि गणित के एकमात्र नहीं तो सबसे महत्वपूर्ण हिस्से हैं । इनके लिए गणितीय सोच की बुनियादी शक्ति, स्वयंसिद्ध मान्यतायें, याद करने की वस्तु है । उनका मानवीय सोच की सृजनात्मकता से कोई सरोकार नहीं दिखता । इनको हम 'गणित में सरलीकरण (रिडक्शन) की भूल' कह सकते हैं । यह प्रवृति वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में मूल्यांकन की जरूरतों से निर्देशित है परन्तु साथ ही यह दावा भी करती है कि गणित इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

लेख में 'गणित की प्रकृति एवं भाषा' के अन्तर्गत जिन विचारों की चर्चा की गई है उनके संदर्भ में ये दोनों प्रवृत्तियाँ बच्चों में गणितीय समझ के विकास की दृष्टि से घातक हैं । ये प्रवृत्तियाँ जहां एक ओर गणित की प्रकृति के प्रतिकूल जाती हैं वहीं गणितीय ढाँचे की विशेषताओं को नजरअंदाज भी करती हैं । गणितीय-ज्ञान अमूर्त होने के बावजूद भी मूर्त घटनाओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है । लेकिन इसकी परिधि मात्र मूर्त घटनाओं तक सीमित नहीं होती। इसका फैलाव संभावित तथा असंभावित घटनाओं तक भी होता है । ये दोनों प्रवृत्तियाँ गणितीय-ज्ञान को ठोस अनुभवों तथा कुछ सवाल हल करने तक सीमित करके मानवीय सृजनात्मकता से साक्षात्कार होने के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं ।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में गणित

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) राष्ट्रीय स्तर की ऐसी संस्था है जिसका विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता तथा प्रतिबद्धता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सन् 2000 में इस संस्था द्वारा 'विद्यालयी शिक्षा के लिए

26. वही.
27. डॉ. राज्यश्री अग्रवाल. तर्कशास्त्र का परिचय. मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी. 1999. पृ. 5-7.
28. वही.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' प्रस्तावित की गई । इस दस्तावेज में गणित विषय के संबंध में एक तीसरी तरह की प्रवृति को प्रस्तावित किया गया है । यह प्रवृत्ति भी गणित विषय के प्रतिकूल है । इसके अनुसार 'पाठ्यचर्या में प्रासंगिक अंकगणितीय अवधारणाओं, संख्या प्रणाली ..... का समावेश होना चाहिए' । प्रमाणित करने की अवधारणा का विकास आगमनात्मक तर्क बुद्धि पर जोर देकर करना चाहिए।[29] (पृ. 55-56) इसी दस्तावेज में आगे कहा गया है कि 'प्रयोगों द्वारा गणितीय लक्ष्यों की खोज में सहायता करने के लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं में ही एक गणित कॉर्नर की स्थापना की जा सकती है । इसके लिए वर्तमान विज्ञान प्रयोगशालाओं को विज्ञान-गणित प्रयोगशाला का रूप दिया जा सकता है ।' .... इस प्रयोगशाला को गणित और विज्ञान की खोज के लिए एक संयुक्त केन्द्र के रूप में विकसित करना होगा । वास्तविक जीवन-स्थितियों पर आधारित स्वदेशी अनुभवों और गणितीय नवाचारों को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार गणित शिक्षण की मूल्यांकन-योजना में गणित को विज्ञान के बराबर वेटेज देना होगा' (पृ. 56)। उपरोक्त पंक्तियों में गणित के विषय में जो कुछ कहा गया है कि वह इसकी प्रकृति से मेल नहीं खाता है । यदि विद्यार्थियों को यह समझाना हो कि - त्रिभुज के तीनों कोणों का योग 180^0 होता है, तो कितनी ही कोशिशों के बावजूद क्या आगमन पद्धति द्वारा इसे प्रमाणित किया जा सकता है ? आगमन द्वारा प्रमाणित करने का सवाल तो तब उठता है जब 'त्रिभुज' ठोस रूप में अवलोकित किया जा सके । इसलिए यह एक भ्रम है कि गणितीय अवधाारणाओं की जांच प्रयोगात्मक विधि द्वारा की जाए। आखिर यह भ्रम क्यों फैलाया जा रहा है ? इस प्रश्न का उत्तर भी उपरोक्त पंक्तियों में ही दिया गया है। इन पंक्तियों से साफ है कि गणित को विषय केरूप में न पढ़ाकर तकनॉलॉजी के मातहत के रूप में पढ़ाया जाये । यदि वास्तुशिल्प की दृष्टि से विचार किया जाए तो रहस्य दूर होने लगता है । विज्ञान-प्रयोगशालाओं में गणित को एक कोने पर रखना इस मंशा को उजागर करता है कि तकनॉलॉजी को विकास का सर्वोच्च मानदंड मानने वालों के मस्तिष्क में इस विषय के लिए कितनी इज्जत है । इसका जबाव बिड़ला-अंबानी रिपोर्ट[30] की सिफारिशों में भी देखा जा सकता है। यह रिपोर्ट 24 अप्रैल 2000 को व्यापार और उद्योग पर गठित प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद् को सौंपी गई। इस रिपोर्ट में दर्शनशास्त्र को दरकिनार करने को कहा गया है। कहने को तो रिपोर्ट में दर्शनशास्त्र की महत्ता को स्वीकारा गया है लेकिन बाजार में बिकाऊ न होने के कारण यह सिफारिश की गई है कि इस विषय की जिम्मेवारी सरकार उठाए ।[31] इसी रिपोर्ट में यह भी सिफरिश की गई है कि उच्च शिक्षा की जिम्मदारी निजी संस्थाओं तथा निजी विश्वविद्यालयों को उठानी चाहिए ।[32] निजी संस्थाएं दर्शनशास्त्र पढ़ायेंगी नहीं, सरकार से कहा जा रहा है कि वह उच्च शिक्षा से दूर रहे, यानि दर्शनशास्त्र भारतीय मस्तिष्क से बहिष्कृत कर दिया जाए । इसी रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि शिक्षण-पद्धति के रूप में प्रयोगात्मक विधि को अपनाया जाए।[33] चाहे विषय की प्रकृति कैसी भी हो उसे प्रयोग (एक्सपेरीमेंट) द्वारा ही पढ़ाये जाने का दुराग्रह, इस बात को समझने में मदद करता है कि दर्शन-विषय ही नहीं, विषयों के दर्शन को भी स्मृतियों से मिटाने की योजना है । कुछ लोगों की सोच का केन्द्रीय प्रश्न यह बन गया लगता है कि मौलिक प्रश्न उठाने वाले ज्ञान के प्रत्येक हिस्से को कैसे निर्मूल किया जाए ? इसीलिए जहां एक ओर दर्शन विषय को खत्म किए जाने की सिफारिशें प्रस्तुत की जा रही हैं वहीं दूसरी ओर विषयों के दर्शन को समाप्त करने के लिए निर्णय ले लिए गये हैं। ऐसे निर्णय समाज को अधिक तेजी के साथ उस जगह ले जा सकते हैं जहां किसी भी दिए गए कार्यक्रम को लागू करवाने के लिए लोगों की भावात्मक सहमति आसानी से (टिप्पणी, 3) प्राप्त की जा सके। किसी भी प्रकार के दर्शन को स्मृतियों से हटाने के ढांचागत फैसले, इसी तैयारी के पुख्ता सबूत पेश करते हैं ।

किसी गतिविधि का उपयोग करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षण–सामग्री किस सीमा तक विषय को समझने तथा आगे बढ़ाने में मदद करती है तथा कहां उसमें बाधक होती हैं। यह हो सकता है कि जिस शिक्षण–सामग्री का उपयोग किया जा रहा है वह विद्यार्थियों को विषय से दूर ले जाकर उनके मस्तिष्क में उस सामग्री की सुन्दरता, पदार्थ, उसके बनने की प्रक्रिया, सामाजिकता तथा आर्थिकता से संबंधित सवाल पैदा करे । वे सवाल उपयोगी हो सकते हैं, लेकिन विषय–विशेष में वे कितने उपयोगी हैं, यह भी विचारणीय है।

29. विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा. एनसीईआरटी. नई दिल्ली. 2000. पृष्ठ 55-56.

30. ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफॉर्मस इन एजुकेशन, मुकेश अंबानी (संयोजक)तथा कुमारमंगलम बिड़ला (सदस्य) व्यापार और उद्योग पर प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद् भारत सरकार . नई -दिल्ली. अप्रैल 2000.

31. वही. पृ. 83,

32. वही. पृ. 32,

33. वही. पृ. 59,

अन्तर्सम्बंध एवं सुझाव

विषय की प्रकृति, शिक्षणशास्त्र तथा शिक्षण-पद्धति में अन्तर्सम्बंध होता है। यह संबंध ढेर किस्म का न होकर समेकित किस्म का होना चाहिए । इस अन्तर्सम्बंध में बच्चे की प्रकृति तथा बच्चे में ज्ञान का विकास एवं निर्माण दोनों ही प्रमुख हैं । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इनके मध्य स्वस्थ समेकित संबंध के विकास को चुनौती के रूप में स्वीकार करके इस दिशा में कार्य किया जाये । ऐसा करने के लिए बच्चे तथा विषय दोनों की प्रकृति को समझना आवश्यक है । इस उद्देश्य की पूर्ति करने में शिक्षण शास्त्र की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है । शोध के नए क्षेत्र खोलकर इस मुद्दे पर अध्ययन किया जाना चाहिये कि किन शिक्षण विधियों को अपनाकर बच्चे तथा विषय दोनों ही के साथ न्याय किया जा सकता है ? विषय की प्रकृति का बच्चे की प्रकृति के साथ तालमेल बैठाकर पढ़ाया जाना बालकेन्द्रित शिक्षा का ही अंग है । शिक्षा को बालकेन्द्रित बनाने के नाम पर गलत पढ़ाने का अधिकार नहीं मिल जाता। गणित की प्रकृति को महत्व दिये जाने के खिलाफ यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक कक्षाओं में अमूर्त संकल्पनाओं को नहीं पढ़ाया जा सकता । इस जवाब में हमारा तर्क है कि समानता जैसी संकल्पनाएं अमूर्त न सही, सामान्यीकृत संकल्पनाएं जरूर हैं। एक मायने में ऐसी संकल्पनाएं 'एब्सोल्यूट इम्पेरेटिव' के रूप में भी समझी जाती हैं । तो क्या यह मान लिए जाए कि इतनी गंभीर संकल्पनाओं के लिए प्राथमिक स्कूली पाठ्यक्रम में कोई जगह नहीं होनी चाहिए या इसके विपरीत ये संकल्पनाएं स्कूल की प्रत्येक गतिविधि में अन्तर्ग्रन्थित होकर 'समानता' जैसी संकल्पनाओं के वृहतर रूप की ओर बढ़ने में विद्यार्थी की मदद करें ; क्या माध्यमिक स्तर पर इन्हें एकाएक शुरू किया जा सकता है ?

शिक्षा को बालकेन्द्रित बनाने की एकतरफा धुन शुरू में विषय के लिए लेकिन बाद में विषय तथा बच्चे दोनों के लिए बुरी साबित हो सकती है । एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा दूसरी कक्षा के लिए प्रकाशित गणित की पुस्तक[34] में सम तथा विषम संख्याओं को समझाने के लिए एक आपत्तिजनक तरीका अपनाया गया है। इसमें भौतिक समता तथा विषमता के उदाहरण के माध्यम से गणितीय सम तथा विषम संख्या को समझाने का भ्रम पाला गया है। इसलिए इस मामले में दिए गए चित्रों का उपयोग गैर शिक्षणशास्त्रीय हो गया है ।

संख्याओं का विकास क्रम जब परिमेय संख्याओं तक पहुंचा तो यह माना जाने लगा था कि संख्या रेखा पर कोई भी जगह खाली नहीं बची है यानि इस काल्पनिक रेखा पर किन्हीं और संख्याओं के आने की आशा नहीं की गई थी । यह आशा पाइथोगोरस प्रमेय के आने के बाद टूटी । इस प्रमेय ने दिखाया की इकाई भुजा वाले वर्ग का विकर्ण Ö2 होता है। Ö2 प्राकृत, पूर्ण तथा परमेय संख्याओं में से नहीं थी । लेकिन संख्या रेखा पर इसका अस्तित्व साबित हो चुका था । यह भी समझ में आया कि संख्या रेखा पर कुछ छिद्र हैं जिनमें से किसी एक को Ö2 भरती है ।[35] संख्या रेखा तथा उसमें विभिन्न संख्याओं के स्थान को किसी चित्र या गतिविधि द्वारा तो समझाया भी जा सकता है, लेकिन इस मामले में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग नहीं किया जा सकता ।

इसके बावजूद भी अगर ऐसा किया जाने के निर्णय, राष्ट्रीय स्तर पर लिए जाते हैं तो जरूरी हो जाता है कि इसके कुछ और सूत्र तलाशे जायें। ◆

34. वी. पी. गुप्ता, लेटस् लर्न मैथमेटिकस. 2003 पृ. 4.

टिप्पणियां :

1. लेख का यह अंश अल्बर्ट आंइस्टीन द्वारा जैक्वीज हेडेमर्ड को भेजे गये एक प्रश्न के जवाब पर आधारित है । जैक्वीज हेडेमर्ड द सॉयकोलॉजी ऑफ इन्वेन्शन इन द मैथमैटिकल फील्ड डोवर पब्लिकेशन यू.एस.ए. 1945 पृ. 142-143.

2. सन् 1914 में प्रशियन अकेडमी ऑफ साइंस के उद्घाटन समारोह में व्याख्यान देते हुए आइंस्टीन ने सैद्धांतिक तथा प्रयोगात्मक भौतिकी में अन्तर किया था । अलबर्ट आइंस्टीन, आइडिऑज एंड ऑपिनियन, रूपा एण्ड कंपनी, नई दिल्ली 2002 पृ. 220 -223.

'भौतिक विज्ञान अब विकास की उस अवस्था में पहुंच चुका है जिसने अवलोकन योग्य घटनाओं को इन्द्रिय अनुभवों हेतु उपयुक्त भाषा में व्यक्त करना असंभव बना दिया है । ऐसे में गणित की भाषा ही एकमात्र उपयुक्त भाषा है (स्वनुदित) ।' ब्रटर्नल रसल. द साइंटिफिक आउटलुक. 1931. पृ. 63 जो कि एफ.ए.हेयूक. द काउन्टर रिवोलूशन ऑफ साइंस. द फ्री प्रैस. 1952 पृ. 20 पर उद्धरित है। एलडन जे गार्डनर, 'हिस्टरी ऑफ बॉयलोजी' विली ईसटर्न लि. नई दिल्ली. 1978 पृ. 126.

3. सन् 1861में ब्रिटेन के राजकुमार जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'सब्जेक्शन ऑफ वीमेन' नाम से एक पुस्तक लिखी जिसका प्रकाशन हिन्दी में सन् 2002 में 'स्त्रियों की पराधीनता' नाम से प्रकाशित हुआ । इस पुस्तक में मिल लिखते हैं कि महिलाओं को समझ विकसित करने की अपेक्षा भावनाओं की शिक्षा अधिक दी जाती है। उनकी शिक्षा का यही तत्व उनमें पुरूष के वर्चस्व तथा दमन के बावजूद उनके प्रति आदर का भाव भरता है । वे लिखते हैं कि 'पति व पत्नी के बीच का संबंध राजा व प्रजा के बीच संबंध के समान ही है, सिवाय इसके कि प्रजा की अपेक्षा एक पत्नी की आज्ञाकरिता अबोध व असीमित होती है ।' (पृ. 112) ।

35. फ्रेडरिक वैसमैन. इन्ट्रोडक्शन टू मैथमेटिकल थिंकिंग, हॉफनर पब्लिशिंग कंपनी लि. लंदन. 1951, पृ. 1-8. । लेख का यह अंश इस संदर्भ पर आधारित है ।